थोडी लघु कृतियाँ

म. विनयसागर

(१)

श्रीसिद्धिविजय रचित

नेमिनाथ-भासद्वय

आबाल ब्रह्मचारी २२वें भगवान् नेमिनाथ के सम्बन्ध में बहुत साहित्य प्राप्त है। प्राकृत, संस्कृत, भाषा साहित्य में इनसे सम्बन्धित अनेकों कृतियाँ बहुतायत से मिलती हैं। श्री वादीदेवसूरि के शिष्य श्री रत्नप्रभसूरि रचित नेमिनाथ चरियं, उदयसिंहसूरि रचित नेमिनाथ चरियं, श्री सूराचार्य रचित द्विसन्धान काव्यं, श्री कीर्तिराजोपाध्याय रचित नेमिनाथ महाकाव्यं, विक्रम रचित नेमिदूतम्, पादपूर्ति साहित्य प्रभृति, और भाषा साहित्य में रास, गीत, भजन, बारहमासा आदि विपुल कृतियाँ प्राप्त हैं।

भास-द्वय के रचयिता सिद्धिविजय हैं। पट्टावली समुच्चय पृ. १०९ के अनुसार हीरविजयसूरि के शिष्य कनकविजय-शीलविजय के शिष्य सिद्धिविजय हैं। इनके सम्बन्ध में अन्य कोई परिचय प्राप्त नहीं होता है।

भास-द्वय का एक स्फुट पत्र प्राप्त है। जो १७वीं शताब्दी का ही लिखित है। जिसका माप २४.३ x १०.४ से.मी. है, दोनों भासों की कुल पंक्ति १३ तथा प्रति अक्षर ४२ हैं। अक्षर बड़े और सुन्दर हैं। भाषा गुर्जर है। इन दोनों भाषों का सारांश इस प्रकार है :-

विवाह हेतु गए हुए नेमिनाथ ने जब पशुओं की पुकार सुनी तो रथ को वापिस मोड़ लिया। उस छबीले नेमिनाथ के नयन कठोर हो गए। दूसरे पद्य में आषाढ़ मास के आने पर काले बादल छा गए हैं और घनघोर वर्षा हो रही है। तीसरे पद्य में सावन का महिना और उस वर्षा की छाया चल रही है। भादवे के महिने में वही छाया स्नेह को जागृत करती है और आसोज के महिनें में नेत्रों में आंसू ढलकाती हैं। चौथे पद्य में नेमिनाथ की काया सुन्दर है। वह इतनी माया क्यों कर रहे हैं और मेरे हृदय में विरहानल की आग को क्यों प्रदीप्त कर रहे हैं। पाँचवें पद्य में उनकी कर्त्तव्यशीलता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को देखकर मेरा चित्त चमत्कृत हो रहा है। नेमीश्वर मुझे छोड़ गए हैं और मैं किसके समक्ष अपने हृदय की बात कहूँ। छठे पद्य में जिसने भी नेमिनाथ को प्राप्त कर लिया है, वैसे का जग में आना भी धन्य है। इस प्रकार राजुल विलाप करती है। सातवें पद्य में कवि सिद्धिविजय कहता है कि यह भव परम्परा की डोर टूट गई है। नेमिनाथको केवलज्ञान होने पर राजुल ने भी प्रभु को प्राप्त कर लिया है।

दूसरे भास में राजुल अपनी सखी बहिन को कहती है- सुनो मेरी बहिन ! मेरा वही दिन धन्य होगा जब मैं इन लोचनों से उनके दर्शन करूँगी। अभी तो मैं जल बिना मछली की तरह तड़प रही हूँ। विरहानल मेरे देह को जला रहा है। मैं मन की बात किसे कहूँ ? मैं पूछती हूँ कि यहाँ तोरण तक आकर वापस लौटने का क्या कारण है ? निरंजन नेमिनाथ का ध्यान एवं विलाप करती हुई राजुल सिद्धि सुख को प्राप्त करती है। ये दोनों भास अद्यावधि अप्रकाशित हैं और अप्राप्त भी हैं। सिद्धिविजयजी के प्रशिष्य प्रसिद्ध श्री महोपाध्याय मेघविजयजी थे।

सिद्धिविजयजीकी केवल चार ही लघु कृतियाँ प्राप्त हैं। दो नेमिनाथभास जो प्रस्तुत हैं और दो भास श्री विजयदेवसूरि से सम्बन्धित हैं। ये दोनों भास विजयदेवसूरि के परिचय से साथ प्रकाशित किए जाएंगे। इस कवि की अन्य कोई कृतियाँ मुझे प्राप्त नहीं हुई हैं। दोनों भास प्रस्तुत हैं :-

(१) नेमिनाथ-भास

परणकुं नेमि मनाया तब पसुअ पुकार सुणाया।
रथ फेरि चले यदुराया छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥ १॥
नीके नयन कठोर भराया, छबीले नेमि जिणिंद न आया ॥ आंचली ॥

उनयु जलधर जब आया घनश्याम घटा झड़ लाया ॥
इसउ मास आसाढ सोहाया छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥ २॥

सावण की लागी छाया भाद्रवडइं नेह जगाया।
आसूडइ आंसु भराया, छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेमिसरनि वरकाया काहे इतनी करी माया ।
विरहानल मोहि लगाया छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥४॥
मोहि चित्त चमक्कउ लाया नेमीसर छोडि सधाया ।
अब काह करुं मोरि माया छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥५॥
जिणइं नेम जिणेसर पाया धन सो जन जगमां आया ।
हम बिलवति राजुल राया छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥६॥
भव संतति दोर कपाया राजुल पहु केवल पाया ।
मुनि सिद्धिविजय गुण गाया छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥७॥

इति श्री नेमिनाथ भास समाप्त

(२) नेमिनाथ-भास

सुणउ मेरी बहिनी काह करीजइ रे, नेमि चलउ हइंकु दिन लीजइ रे ॥
सुणउ मेरी बहिनी ॥ १॥
उन दरिसन विन लोचन खीजइं रे, युं सरजल विन सफरी थीजइं रे ॥
सुणउ मेरी बहिनी ॥२॥
विरहानल मुदि देह दहीजइ रे, मनकी वात कहो क्या कीजइ रे ॥
सुणउ मेरी बहिनी ॥३॥
तोरणथी जउ फेरी चलीजइ रे, तउ किन कारण इहां आईजइ रे ॥
सुणउ मेरी बहिनी ॥४॥
जउ उनकी कब बात सुणिजइ रे, हार वधाइउ उसकुं दीजइ रे ॥
सुणउ मेरी बहिनी ॥५॥
सोच न जीहा तास घड़िजइ रे, जउ उनविय वात सुणीजइ रे ॥
सुणउ मेरी बहिनी ॥६॥
नेमि जिरंजन ध्यान करीजइ रे, सिद्धिविजय मुख करतल लीजइ रे ॥
सुणउ मेरी बहिनी ॥७॥

इति श्री नेमिनाथ भास समाप्त

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२)

कनकमाणिक्यगणि कृत

महोपाध्याय अनन्तहंसगणि स्वाध्याय

अनन्त अतिशयधारी तीर्थङ्करों, गणधरों, विशिष्ट आचार्यों एवं महापुरुषों के नाम-स्मरण एवं गुणगान से हमारी वाणी पवित्र होती है। श्रद्धासिक्त हृदय से हमारी वाणी भी कर्मनिर्जरा का कारण बनती है। पूर्व में प्रायः करके ये समस्त गुणगान प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में हुआ करते थे, किन्तु समय को देखते हुए आचार्यों ने इन कृतियों को प्रादेशिक भाषाओं में भी लिखना प्रारम्भ किया। मरु-गुर्जर भाषा में रचित काव्यों को गहूँली, भास, स्वाध्याय, गीत आदि के नाम से कहा जाने लगा।

प्रस्तुत कृति महोपाध्याय श्री अनन्तहंसगणि से सम्बन्ध रखती है। इस कृति का स्फुट पत्र प्राप्त हुआ है, जिसका विवरण इस प्रकार है :- साईज २६x३, ११x३ से.मी. है। पत्र संख्या १, पंक्ति संख्या कुल १७ है। अक्षर लगभग प्रति पंक्ति ४५ हैं। लेखन संवत् नहीं दिया गया है, किन्तु १६वीं सदी का अन्तिम चरण प्रतीत होता है। स्तम्भतीर्थ में लिखी गई है। भाषा मरु-गुर्जर है। कई-कई शब्दों पर अपभ्रंश का प्रभाव भी नजर आता है।

इसके कर्ता श्री कनकमाणिक्यगणि हैं। इनके सम्बन्ध में किसी प्रकारका कोई इतिवृत्त प्राप्त नहीं है।

महोपाध्याय श्री अनन्तहंसगणि प्रौढ़ विद्वान् थे, और श्री जिनमाणिक्यसूरि के शिष्य थे। इस रचना के अनुसार तपगच्छपति श्री लक्ष्मीसागरसूरि ने इनको उपाध्याय पद प्रदान किया था और श्री सुमतिसाधुसूरि के विजयराज्य में विद्यमान थे।

इस कृति के प्रारम्भ में उपाध्याय श्री अनन्तहंस गणि के गुण-गणों का वर्णन किया गया है। लिखा गया है कि-

ये जिनशासन रूपी गगन के चन्द्रमा हैं,त्रिभुवन को आनन्द प्रदान करने वाले हैं, नेत्रों को आनन्ददायक कन्द के समान हैं। मान रूपी मद का निकन्दन करनेवाले हैं। उपाध्यायों में श्रेष्ठ राजहंस हैं। सुधर्मस्वामी के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समान नाम ग्रहण करने से नवनिधि प्राप्त होती है । इनके दर्शन से परमानन्द, सुख-सौभाग्य और सत्कार की प्राप्ति होती है । इनके गुण मेरु पर्वत के समान हैं और वचनामृत सोलह कलापूर्ण चन्द्रमाके समान हैं । स्वरूपवान हैं । ग्यारह अङ्ग को धारण करने वाले हैं । आगम, छन्द, पुराण के जानकार हैं । तपागच्छ को दीपित करने वाले हैं । कामदेव को जीतने वाले हैं, और मान-मोह का निराकरण करने वाले हैं । पूर्व ऋषियों के समान अनुपम आचार और संयम को धारण करने वाले हैं । जिस प्रकार आषाढ़ की घनघोर वर्षा से पृथ्वी प्रमुदित होती है, उसी प्रकार इनकी सरस वाणी रूपी झिरमिर से सब लोग प्रमुदित होते हैं । छट्ठे पद्य से कवि ऐतिहासिक घटना की ओर इंगित करता है ।

ईडर नगर के अधिपति महाराजा भाण अच्छे कवि थे और कवियों का सत्कार सम्मान करते थे । सातवें-आठवें पद्य में श्री जिनमाणिक्यसूरि के तप-तेज, संयम का वर्णन करते हुए लिखा है कि श्री अनन्तहंसगणि श्री जिनमाणिक्यसूरि के शिष्य थे । नवमें पद्य में तपागच्छाधिपति श्री लक्ष्मीसागरसूरि ने अनन्तहंसगणि को उपाध्याय पद प्रदान किया । दसवें पद्य में गच्छपति श्री सुमतिसाधुसूरि जो कि आगमों के ज्ञाता जम्बूस्वामी और वज्रस्वामी के समान थे, उन्हीं के शिष्य ने इस स्वाध्याय की रचना की है । अन्त में कवि कहता है कि जब तक सातों समुद्र, चन्द्र, सूर्य, मेरु, धरणी, मणिधारक सहस्रफणा सर्पराज विद्यमान हैं, तब तक तपागच्छ के प्रवर यतीश्वर श्री अनन्तहंस संघ का मङ्गल करें ।

पद्य छः के प्रारम्भ में राजा वल्लभ भाषा उल्लेख है । सम्भवतः यह किसी देशी या राग-रागिणी का नाम होना चाहिए ।

श्री मोहनलाल दलीचन्द. देसाई लिखित 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' पैरा नं. ७२४ में लिखा है :- भाण राजा के समय में ईडर दुर्ग पर सोनीश्वर और पता ने उन्नत प्रासाद बनाकर अनेक बिम्बों के साथ अजितनाथ भगवान की प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १५३३ में करवाई थी । इसी भाण राजा के राज्यकाल में कोठारी श्रीपाल ने सुमतिसाधु को आचार्य पद दिलवाया था । अहमदाबाद निवासी हरिश्चन्द्र ने राजप्रिय और इन्द्रनन्दी को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य पद दिलवाया था । अहमदाबाद के मेघमन्त्री ने धर्महंस और इन्द्रहंस को वाचक पद, पालनपुर निवासी जीवा ने आगममण्डन को वाचक पद और ईडर के भाण राजा के मन्त्री कोठारी सायर ने गुणसोम को, संघपति धन्ना ने अनन्तहंस को एवं आशापल्ली के झूठा मौड़ा ने हंसनन्दन को वाचक पद दिलवाया था । श्री देसाई लिखते हैं कि इस ईडर में तीन साधुओं को आचार्य पद, छः को वाचक पद और आठ को प्रवर्तिनी पद पृथक्-पृथक् रूप से प्राप्त हुआ था । अर्थात् उस समय ईडर धर्म की नगरी बनी हुई थी ।

पैरा नं. ७५८ में लिखा है :- अनन्तहंसगणि ने १५७१ में दस दृष्टान्त चरित्र की रचना की थी, और पैरा नं. ७३८ में लिखा है कि संवत् १५७० में अनन्तहंस ने ईडरगढ़ चैत्य का वर्णन करते हुए ईला प्राकार चैत्य परिपाटी लिखी थी ।

इस प्रकार इस कृति से तीन महत्त्वपूर्ण तथ्य उभरकर आते हैं :- १. अनन्तहंसगणि श्री जिनमाणिक्यसूरि के शिष्य थे, २. श्री लक्ष्मीसागरसूरि ने अनन्तहंस को उपाध्याय पद प्रदान किया था और ३. सुमतिसाधुसूरि के शिष्य कनकमाणिक्यगणि ने इस स्वाध्याय की रचना की थी ।

तपागच्छ पट्टावली पृष्ठ ६७ के अनुसारश्री जिनमाणिक्यसूरि, श्री लक्ष्मीसागरसूरि के शिष्य थे ।

श्री लक्ष्मीसागरसूरि ५३वें पट्टधर थे । इनका जन्म १४६४, दीक्षा १४७७, पन्यास पद १४९६, वाचकपद १५०१, आचार्य पद १५०८, गच्छनायक पद १५१७ में प्राप्त हुआ था और सम्भवतः १५४१ तक विद्यमान रहें ।

सुमतिसाधुसूरि ५४वें पट्टधर थे और इनको आचार्य पद श्री लक्ष्मीसागरसूरि ने प्रदान किया था । इनका जन्म संवत् १४९४, दीक्षा संवत् १५११, आचार्य पद १५१८ और स्वर्गवास संवत् १५५१ में हुआ था । विशेष कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है । यह निश्चित है कि अनन्तहंसगणि को उपाध्याय पद विक्रम संवत् १५२५ से १५३५ के मध्य में प्राप्त हो चुका था । इनके उपदेश से १५२९ में लिखित शिलोपदेश माला की प्रति पाटण के भण्डार में हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस रचना को ऐतिहासिक रचना मानकर ही प्रस्तुत किया जा रहा है :-

जय जिणशासण-गयणचन्द, तिहूअण-आणन्दण ।
जय जण-नयणानन्द-कन्द, मदमान-निकन्दण ॥
उवझाया सिरि रायहंस-अवयंस भणीजइ ।
मुणिवर श्रीय **अनन्तहंस**-गुण किम्पि थुणीजइ ॥१॥

दक्षिणी ढाल

ए सुणिवरू ए सोहमसामि नामिइ नवनिधि पाईइ ।
तुम दरिसणि ए परमाणंद सम्पद सुक्ख सकाराहीइं ॥२॥
तुम्ह गुरुअडि ए गुणह पमाण मेरु समाण वखाणीइ ।
तुम्ह वयणला ए अमीय कलोल सोल कला ससि जाणीइ ॥३॥
तुम्ह सूरति ए सहजि सुरंग अंग अग्यार मुखिइ धारइ ।
एह आगम ए छंद पुराण जाणपणइं जणमण हरइ ॥४॥
तपगच्छि दीपिइ मयण जीपइ माण माण मोह निराकरइ ।
आदिल ऋषि आचार अनुपम सुपरि संजम मनि धरइ ॥
आषाढ़ जलधर सधरधार धोरणी जिम विस्तरइ ।
वरिसन्ति वाणी सरस को नरवर समुभर झिरि मिरि झडि करइ ॥५॥

राजा वल्लभभाषा

धन धन ईडर नयर नाह लीलापति हिन्दु पातसाह ।
नव कवित विनोद कला सुजांण रंजविउ यस भुपति **राय भाण** ॥६॥
गुरु महिमा महिमण्डलि अनन्त गुरु दिनकर अवनि... वन्त ।
गुरु तप जप सय संयम तेजवन्त गुरु पञ्चम कालि प्रतापवन्त ॥७॥
गुरि विनय विवेक समायरीयगुरि विज्जुवउ चअल केरिय ।
गणधर श्री **जिनमाणिक्क**-पाय तुट्ठे तुम्ह आप्यउ ए पसाय ॥८॥
रागि णीरागता पुण तपगच्छपति सिय **लखिमीसागरसूरि** ।
हाँसी आणंद धना-वि.... अनन्तहंस उवझाय पद ठवणइ ॥
परिग युगति दाखी नव ए ॥९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमइ ए जम्बूय वयरकुमार तेह जो मलि एह मुनिवरूए ।
गच्छपति श्री **सुमतिसाधुसूरिन्द** सीसरयण मंगलकरूं ए ॥१०॥
जां सात सायर ससि दिवायर मेरु अविचल मन्दरो ।
जो धरइ धरणि बीय भुअबलि सेसफणवय मणिधरो ॥
तां लगइ प्रतपउ इणि तपागच्छि पवर एह यतीसरो ।
श्री संघ मंगल करण सहगुरु **अनन्तहंस** सुहंकरो ॥११॥
इति महोपाध्याय श्रीअनन्तहंसगणिपादानां स्वाध्यायः ॥६॥
कृतः कनकमाणिक्यगणिभिः ॥ श्री स्तम्भतीर्थनगरे ।
॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥

(३)

श्री भीमकवि रचित

श्रीविजयदानसूरि भास

आचार्य पुरन्दर श्री विजयदानसूरि, श्री आनन्दविमलसूरि के पट्टधर थे । तपागच्छ पट्टावली के अनुसार विजयदानसूरि ५७वें पट्टधर थे । इनका जन्म १५५३ जामला, दीक्षा १५६२, आचार्य पद १५८७ और १६२२ वटपल्ली में इनका स्वर्गवास हुआ था । मन्त्री गलराज, गान्धारीय सा. रामजी, अहमदावादीय श्री कुंवरजी आदि इनके प्रमुख भक्त थे । महातपस्वी थे । इनका प्रभाव खम्भात, अहमदाबाद, पाटण, महसाणा और गान्धारबन्दर इत्यादि स्थलों पर विशेष था । इनके द्वारा प्रतिष्ठित शताधिक मूर्तियाँ प्राप्त हैं ।

इनके सम्बन्ध में कवि भीमजी रचित स्वाध्याय का एक स्फुट पत्र प्राप्त है । जिसका माप २६ x ११ x ३ से.मी. है, पत्र १, कुल पंक्ति १५, प्रति अक्षर ५२ हैं । लेखन १७वीं शताब्दी है । भास की भाषा गुर्जर प्रधान है । कहीं-कहीं पर अपभ्रंश भाषा का प्रभाव की दृष्टिगत होता है । इस पत्र के अन्त में श्री विजयहीरसूरि से सम्बन्धित दो सज्झायें दी गई हैं ।

इस कृति में विजयदानसूरि के सम्बन्ध में एक नवीन ज्ञातव्य वृत्त प्राप्त होता है । जिसका यहाँ उल्लेख आवश्यक है :-

विक्रम संवत् १६१२ में आचार्यश्री नटपद्र (संभवतः नडियाद) नगर पधारे । संघ ने स्वागत किया । वहाँ का सम्यक्त्वधारी श्रावक संघ बहुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हर्षित हुआ। साह जिणदास के पुत्र साह कुंवरजी के घर आचार्य ने चातुर्मास किया। अनेक प्रकार के धर्मध्यान हुए। मासक्षमण आदि अनेक तपस्याएं हुई। अनेक मार्ग-भूलों को मार्ग पर लाये। भादवें के महीनें में वहाँ के समाज ने अत्यधिक लाभ लेते हुए पुण्य का भण्डार भरा। तपागच्छाधिपति श्री आणन्दविमलसूरि के शिष्य विजयदानसूरि दीर्घजीवि हों।

श्री लक्ष्मण एवं माता भरमादे के पुत्र ने दीक्षा लेकर जग का उद्धार किया। भीमकवि कहता है कि इनका गुणगान करने से संसार सागर को पार करते हैं।

इससे ऐसे प्रतीत होता है कि आचार्यगण विशिष्ट कारणों से श्रावक के निवास स्थान पर भी चातुर्मास करते थे।

रचना के शेष भाग में आचार्यश्री के गुणगौरव, साधना, तप-जप-संयम का विशेष रूप से वर्णन हैं।

विजयदानसूरि के माता-पिता के नामों का उल्लेख तपागच्छ पट्टावली में प्राप्त नहीं है, वह यहाँ प्राप्त है।

भक्तजन इसका स्वाध्याय कर लाभ लें इसी दृष्टि से यह भास प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्री विजयदानसूरि भास

विणजारा रे सरसति करउ पसाउ।
श्री विजयदानसूरि गाईइ गच्छनायकजी रे ॥वि. १ ॥
गुण छत्रीस भण्डार जंगम तीरथ जाण ॥वि. २ ॥
आव्यो मास वसन्त व्याहार विदेश गुरु करई ॥ग. वि. ३ ॥
जोया देश विदेश लाभ घणउ गुजर भणी ॥ग. वि. ४ ॥
मुगति थी के क... पूंजी पञ्च महाव्रत भरी ॥ग. वि. ५ ॥
पोठी वीस समाधि दुविध धर्म गुणी गुल भरी ॥ग. वि. ६ ॥
सुमति गुपति रखवाल ताहरइ आठइ साथी अति भला ॥ग. वि. ७॥
जयणा शंबल साथी जीता दाणी करवाय ते दोहिल्या ॥ग.वि. ८॥
संवत् सोल बार नटपद्र नयर पधारिया ॥ग. वि. ९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहामइ संघ पहुँच तिहां श्रीसंघवति वेचइ घणउ ।।ग. वि. १०।।
घरि घरि उच्छव रङ्ग मङ्गल गाइं मानिनी ।।ग. वि. ११।।
साटइ पुण्य पवित्र तिहां नवतत्त्व वानी दाखवि ।।ग. वि. १२।।
जोई लेज्यो जाण पारखि हुइ ते परख यो ।।ग. वि. १३।।
बहुरा श्रावक सारा तिहां समकित धारी हरखिआ ।।ग. वि. १४।।
ताहारा टाडा मांहि मु... लति रोकड़ी वस्त घणी ।।ग. वि. १५।।
भरीया पुण्य भण्डार धन नडियाइ सोहामणुं ।।ग. वि. १६।।
साहा जिणदास सुतन्न **साहा कुंवरजी** घरी चउमासि रया ।।ग. वि. १७।।
आगली आव्यउं चउमासी वस्तणुं फरकुं थयुं ।।ग. वि. १८।।
तप जप जय पोसह नीम बहु उपधान ते आदर्यां ।।ग. वि. १९।।
मासखमण मन रङ्गी पाख छट्ठ अट्ठम घणा ।।ग. वि. २०।।
दिनि दिनि अधिकउ लाभ भूलां मारगि लाइया ।।ग. वि. २१।।
ताहरइ वस्तु अनेक भाईग होसी ते बहु रसि ।।ग. वि. २२।।
ताहरा विण जु मझारी खोटि न आवइ खरचतां ।।ग. वि. २३।।
ताहरइ तप भण्डार वावरता वाधइ घणूं ।।ग. वि. २४।।
दिन दिन बि परवेस उभयां पडिक्कमणु करुं ।।ग. वि. २५।।
नित उघराणी एह नाणुं नीमन नवकार-नुउं ।।ग. वि. २६।।
भाद्रवडइ घणउ लाभ पुण्य तणुं पोतुं भरिउं ।।ग. वि. २७।।
ताहारउ भलउ रेवाणउत्र विमल दान गुण आगलउ ।।ग. वि. २८।।
तपगच्छ केरउ राय **श्री आणंदविमलसूरि** गुरु भला ।।ग. वि. २९।।
तास सीस सुपवित्र **श्री विजयदानसूरि** जीवउ घणउं ।।ग. वि. ३०।।
धन-धन **भावड़ तात** धन धन **भरमादे माउलि** ।।ग. वि. ३१।।
धन-धन **लखमण पुत्र** जीणइ दीक्षा लई जग तारीयउ ।।ग. वि. ३२।।
भीम भणइ भगवंत भजसिंइ ते भजसि भवजल तर्यां ।।ग.वि. ३३।।

इति श्री विजयदानसूरि भास

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४)

श्री हीरविजयसूरि सज्झाय

'हीरला' के नाम से समाज प्रसिद्ध जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरि के नाम से कौन अपरिचित होगा ? तपागच्छ पट्टावली के अनुसार ये ५८ वें पट्टधर थे और श्री विजयदानसूरि के शिष्य थे । इनका जन्म संवत् १५८३ प्रह्लादनपुर में हुआ था । पिता का नाम कुंरा और माता का नाम नाथी था । संवत् १५९६ पत्तननगर में दीक्षा, १६०७ नारदपुरी (नाडोल) में पण्डित पद, १६०८ में पट्टधर प्राप्त हुआ था । संवत् १६५२ में इनका स्वर्गवास हुआ था । सम्राट अकबर प्रतिबोधक आचार्य के रूप में इनका नाम विश्व विख्यात है । जगद्गुरु पद सम्राट अकबर ने ही प्रदान किया था । इनका विस्तृत जीवन चरित्र जाननें के लिए पद्मसागर रचित जगद्गुरु काव्य, शान्तिचन्द्रोपाध्याय रचित कृपारस कोष, श्री देवविमल रचित हीरसौभाग्य काव्य, कविवर ऋषभदास रचित हीरविजयसूरिरास, श्री विद्याविजयजी रचित 'सूरीश्वर अने सम्राट्' द्रष्टव्य है ।

इन दोनों सज्झायों का स्फुट पत्र प्राप्त है, जिसकी माप २६ x ११ x ३ से.मी. है, पत्र १, कुल पंक्ति १३, प्रति अक्षर ५२ हैं । लेखन १७ वीं शताब्दी है । भास की भाषा गुर्जरप्रधान है । ये दोनों सज्झायें श्री विजयदानसूरि स्वाध्याय के साथ ही लिखी हुई हैं ।

प्रथम सज्झाय का कर्त्ता अज्ञात है । पाँच गाथाओं की इस सज्झाय में कर्त्ता ने अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है । केवल हीरविजयसूरि के गुणों का वर्णन है । प्रारम्भ में शान्तिनाथ सरस्वती देवी को प्रणाम कर श्री हीरविजयसूरि की स्तुति करूँगा, ऐसी कवि प्रतिज्ञा करता है । श्री आनन्दविमलसूरि के पट्टधर और श्री विजयदानसूरि के ये शिष्य थे । समता रस के भण्डार थे । भविक जीवों के तारणहार थे । नर-नारी वृन्द उनके चरणों में झुकता था । देदीप्यमान देहकान्ति थी । मधुर स्वर में व्याख्यान देते थे । अनेक मनुष्यों, देवों और देवेन्द्रों के प्रतिबोधक थे । चौदह विद्या के निधान थे । ऐसे श्री विजयदानसूरि के शिष्य करोड़ों वर्षों तक जैन शासन का उद्योत करें ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कृति में सम्राट अकबर का प्रसङ्ग नहीं है । अतः यह रचना संवत् १६३९ के पूर्व की होनी चाहिए ।

दूसरी सज्झाय के रचनाकार कौन हैं ? अस्पष्ट है । गाथा ९ के अन्त में लिखा है :- **'श्री विशालसुन्दर सीस पयम्पइ'** इसके दो अर्थ हो सकते हैं । श्री हीरविजयसूरि के शिष्य विशालसुन्दर ने इसकी रचना की है । अथवा विशालसुन्दर के शिष्य ने इसकी रचना की है । यह कृति भी सम्राट अकबर के सम्पर्क के पूर्व ही रचना है ।

इसमें १० गाथाएं हैं । प्रत्येक में आचार्य के गुणगणों का वर्णन हैं। गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है :- श्री हीरविजयसूरि जैन शासन के सूर्य हैं, गुण के निधान हैं, तपागच्छसमुद्र के चन्द्रमा हैं । विनयपूर्वक मैं उनके चरणों को नमस्कार करता हूँ । देवेन्द्र के समान ये गच्छपति हैं । अपने विद्यागुण से इन्द्रजेता हैं । जग में जयवन्त हैं, महिमानिधान हैं, निर्मल नाम को धारण करने वाले हैं । शास्त्रसमूह के जानकार हैं । यम, नियम, संयम, विनय, विवेक के धारक हैं । लक्षणों से सम्पन्न हैं । सर्वदा ज्ञान का दान देते हैं । अपयश से दूर हैं । सुख-सौभाग्य की वल्ली हैं । नयनाह्लादक हैं। गुणों के धाम हैं । यशस्वी हैं । काम को पराजित करने वाले हैं । अन्य दर्शनी भी इन्हें देखकर आनन्द को प्राप्त होते हैं । सूत्र सिद्धान्तों के जानकार हैं । नरनारी व राजाओं को प्रतिबोध देने वाले हैं । क्रोधरहित हैं । उपशम के भण्डार हैं । शत्रुरहित हैं । भव्य जनों के सुखकारी हैं । गुरुप्रसाद से परमानन्द के धारक हैं । ऐसे पञ्चाचारधारक बृहस्पतितुल्य श्री हीरविजयसूरि जब तक मेरु पर्वत, गगन, आकाश, दिवाकर विद्यमान हैं, तब तक जिनशासन का उद्योत करें ।

दोनों सज्झायें प्रस्तुत हैं :-

श्री हीरविजयसूरि सज्झाय

प्रणमी सन्ति जिणेसर राय, समरी सरसति सामिणि पाय ।
थुणसिउं मुझ मनि धरी आणन्द, गुरु श्री हीरविजय सूरिन्द ॥१॥
श्री आणन्दविमलसूरीसर राय, श्री विजयदानसूरि प्रणमुं पाय ।
तास सीस सेवइ मुनिवृन्द, गुरु श्री हीरविजय सूरिन्द ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समतारस केरु भण्डार, भविक जीवनिइ तारणहार ।
पाय नमी नर नारि वृन्द, गुरु श्री हीरविजय सूरिन्द ॥३॥
देह कान्ति दीपइ जिम भाण, मधुरी वाणी करइ वखाण ।
पडिबोहि सुर नर देविन्द, गुरु श्री हीरविजय सूरिन्द ॥४॥
चउदह विद्या गुण रयणनिधान, वाणी सयल सनाव्या आण ।
श्री विजयदानसूरीसर सीस, प्रतिपउ एह गुरु कोडि वरीस ॥५॥

(इति) श्री हीरविजयसूरि सज्झाय

श्री विशालसुन्दर शिष्य रचित

श्री हीरविजयसूरि सज्झाय

श्री जिनशासन भासन भाणू, श्री गुरु गिरिमा गुणह निहाणु ।
श्री तपगच्छ रयणायर चन्द, प्रणमुं हीरविजयसूरिन्द ॥१॥
विनय करी तुझ प्रणमुं पाय, रायइ गच्छपति जिम सुरराय ।
विद्या गुणि जीतउ सुर इन्द्र, प्रणमुं हीरविजयसूरिन्द ॥२॥
जगि जयवन्तउ महिम निधान, जयकारी निरमल अभिधान ।
शास्त्र तणा तुं जाणइं वृन्द, प्रणमुं हीरविजयसूरिन्द ॥३॥
यम नियमादिक संयमवन्त, विनय विवेक धरइ भगवन्त ।
लक्षण लक्षित जस मुझ चन्द, प्रणमुं हीरविजयसूरिन्द ॥४॥
दान ज्ञाननुं आपइ सदा, जगि अपयश पसरइ नवि कदा ।
सुख सोहग वल्लीनउ कन्द, प्रणमुं हीरविजयसूरिन्द ॥५॥
नयणानन्दन गुरु गुणधाम, यशपूरित गुरु निर्जितकाम ।
दरसणि भवीअ लहिइ आणंद, प्रणमुं हीरविजयसूरिन्द ॥६॥
सूत्र सिद्धान्त तणी परिं लहि, सुधी विधि भवियणनइ कहइ ।
रंजइ बहु नर नारी नरिन्द, प्रणमूं हीरविजयसूरिन्द ॥७॥
रीस-रहित उपशम-भण्डार,रिपूवर्जित मनि जन सुखकार ।
गुरु पसाइं लहुं परमाणंद, प्रणमुं हीरविजयसूरिन्द ॥८॥
इय सुगुणु सुहाकर परम क्षमापर, श्री हीरविजयसूरिन्द वरो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरवाणी मनोहर सुरगुरु पुरन्दर, सुन्दर पञ्चाचार धरो ॥
जा मेरु महीधर गगन दिवायर, तां चिर प्रतपउ एह गुरो ।
श्री विशालसुन्दर सीस पयम्पइ, जिनशासन उद्योत करो । । ९। ।

इति श्री हीरविजयसूंरि सज्झाय

C/o. प्राकृत भारती अकादमी
१३-अे, मेन गुरुनानक पथ,
मालवीय नगर,
जयपुर ३०२०१७

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org